इकाई 4 प्रमुख स्कन्ध – होरा

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 होरा स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय

- 4.2.1 होरा–शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त एवं स्वरूप
- 4.2.2 प्रश्न–कुण्डली
- 4.2.3 वर्ष–कुण्डली

4.3 होरा–स्कन्ध की प्रतिष्ठा

- 4.3.1 अथर्वसंहिता
- 4.3.2 अथर्वज्योतिष

4.4 होरा स्कन्ध की प्रगति में पाराशर का अवदान

- 4.4.1 बृहत्पाराशरहोराशास्त्र
- 4.4.2 लघुपाराशरी–मध्यपाराशरी

4.5 होरा स्कन्ध का उत्कर्ष

- 4.5.1 जैमिनिसूत्र
- 4.5.2 बृहज्जातक
- 4.5.3 जातकपारिजात
- 4.5.4 प्रश्नमार्ग
- 4.5.5 ताजिकनीलकंठी

4.6 होरा–स्कन्ध का महत्त्व एवं सम्भावनाएं

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 बोध प्रश्न

4.10 उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिष के होरा–स्कन्ध को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे ।
- होरा स्कन्ध के इतिहास का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे ।
- होरा स्कन्ध में पाराशर, वराहमिहिर आदि के अवदान को निरूपित करने में समर्थ हो सकेंगे ।
- उपस्कन्ध सहित होरा के समग्र स्वरूप को समझाने में कुशल हो सकेंगे ।
- होरा के महत्त्व और संभावनाओं के विवेचन में निपुण हो सकेंगे ।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

4.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व हमने ज्योतिष–शास्त्र के संहिता स्कन्ध पर एक विहंगम दृष्टिपात के द्वारा इसकी विकास–यात्रा को समझने का प्रयास किया।

इस इकाई में हम भारतीय ज्योतिष के होरा–स्कन्ध के स्वरूप, महत्त्व, ग्रन्थों और सम्भावनाओं पर चर्चा करेंगे। यह जातक के विषय में फल का निरूपण करता है। होरा जिसका प्रसिद्ध नाम 'जातक' या 'फलित' है, वह ग्रहों, राशियों और नक्षत्रों के व्यक्ति–विशेष पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन करके उसके भूतकाल और भविष्यकाल में होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान करता है और शुभ–अशुभ फल का कथन करता है। वैदिक काल से लेकर आज तक ज्योतिष शास्त्र अपने लोक–कल्याणकारी चरित्र के कारण सूर्य के समान अपने ज्ञान–रूपी प्रकाश से समाज को सर्वविध आलोकित कर रहा है। इस स्कन्ध के ऐतिहासिक–विकास–क्रम के साथ–साथ इसके विविध स्वरूपों और वर्तमान समय में इसकी सम्भावनाओं का अध्ययन करेंगे ।

4.2 होरा स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय

त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष का तीसरा स्कन्ध है – 'होरा' । इसका प्रचलित नाम 'फलित' या 'जातक' भी है । यद्यपि संहिता के समान इस स्कन्ध में भी विविध राशियों एवं नक्षत्रों में स्थित ग्रहों के विभिन्न फलों का अध्ययन किया जाता है किन्तु संहिता से इसका भेद यही है कि संहिता में समष्टि (समूह या समाज अर्थात् नगर, देश आदि) पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं किन्तु इस फलित या होरा स्कन्ध में व्यष्टि अर्थात् व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं । तब प्रश्न यह है कि व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव के निर्धारण का मानदण्ड क्या है? अर्थात् जब गृह सदैव ही किसी न किसी राशि अथवा नक्षत्र में संचरण करते ही रहते हैं तब किसी व्यक्ति–विशेष पर उनके डाले गए प्रभाव का आंकलन कैसे होगा? और एक व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव से दूसरे व्यक्ति पर पड़ने वाला प्रभाव भिन्न कैसे होगा?

तो इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर है – कुण्डली के आधार पर।यह कुण्डली भी विविध–प्रकार की होती है – 'जन्म कुण्डली', 'आधान–कुण्डली', 'गोचरकुण्डली', प्रश्न–कुण्डली', वार्षिक–कुण्डली' इत्यादि। यह विविधता काल–विशेष या उद्देश्य–विशेष के कारण है । इन कुंडलियों पर आगे विचार किया जाएगा ।

यदि प्रभाव या फल का आख्यान करने के कारण इस स्कन्ध की 'फलित' संज्ञा और जन्मकालीन कुण्डली के आधार पर फल–कथन करने के कारण 'जातक' संज्ञा है तो इसकी 'होरा' संज्ञा क्यूं है? इस सम्बन्ध में आचार्य वराहमिहिर कहते हैं –

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात् ।(बृहज्जातक, १/४)

अर्थात् 'अहोरात्र' इस शब्द के आद्य वर्ण 'अकार' और अन्त्य वर्ण 'त्रकार' का लोप करने से 'होरा' शब्द बनता है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है ।

अब प्रश्न यह है कि इस संज्ञा की क्या प्रासंगिकता है? वस्तुतः अहोरात्र का अर्थ है दिन और रात का सम्पूर्ण कालमान, अर्थात् २४ घंटे (६० घटी)। मेष आदि १२ राशियों का जो चक्र (राशिचक्र) है वह प्रतिदिन १ अहोरात्र (२४ घंटे) में १ चक्कर लगाता है । इस चक्कर लगाने के दौरान राशिचक्र पर स्थित मेष आदि १२ राशियों में से कोई न कोई एक राशि पूर्व क्षितिज पर रहती है। अब चूंकि राशियां १२ हैं और घंटे २४ इसलिए प्रत्येक राशि प्रायः २–२ घंटे पूर्व–क्षितिज पर रहती है । जो राशि क्षितिज पर रहती है उसे 'लग्न' कहते हैं । उदाहरण के तौर पर, यदि मेष राशि प्रातःकाल ६:००

बजे पूर्व क्षितिज पर आई तो मेष लग्न का आरम्भ ६:०० बजे माना जाएगा और स्थूल–रूप से लगभग २ घंटे रहने के बाद अगली वृष राशि ८:०० बजे क्षितिज पर आई तो ८:०० बजे से वृष लग्न आरम्भ (मेष लग्न की समाप्ति) माना जाएगा । इस प्रकार सम्पूर्ण अहोरात्र (२४ होरा) में १२ लग्न पड़ते हैं । यह लग्न ही फलित–शास्त्र का आधार है । अब चूंकि इसी काल–खंड में २४ होरा के मध्य किसी न किसी लग्न में मनुष्य जन्म लेता है, जो कि सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त उसके जीवन को प्रभावित करता है, इसलिए इस शास्त्र को 'होरा–शास्त्र' कहते हैं ।

4.2.1 होरा–शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त एवं स्वरूप

यह होराशास्त्र प्राणी (मनुष्य) के पूर्वजन्म में उसके द्वारा किए गए शुभ अथवा अशुभ कर्म के फल को तथा फलभोग के समय को उसी प्रकार स्पष्ट व्यक्त कर देता है, जैसे दीपक अंधेरे में रखे पदार्थों को स्पष्ट दिखा देता है –

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ।।(लघुजातक, १/२)

कुण्डली में लग्न आदि १२ भावों होते हैं । लग्न एवं राशि के आधार पर १२ राशियों के लिए १२ भावों की चक्रात्मक व्यवस्था ही कुण्डली कहलाती है, जिसके आधार पर ऋषियों ने जन्म से मृत्यु तक जीवन के सभी पक्षों के भविष्य–फल आदि कहे । ऐसे में एक प्रश्न यह होता है कि जीवन के सभी पक्ष इस कुण्डली से किस प्रकार विचारे किये जाते हैं।

वस्तुतः लग्न आदि १२ भावों से अधोलिखित विषयों का विचार होता है, जिसके कारण इन भावों की संज्ञाएं भी उन विचारणीय–विषयों के नाम पर पड़ गईं ।

होरादयस्तनुकुटुम्बसहोत्थबन्धु,
पुत्रारिपत्निमरणानिशुभास्पदायाः ।
रिष्फाख्यम् इति .....।।(बृहज्जातक, १/१६)

तनु, कुटुम्ब (धन), सहज, बन्धु (सुहृद्), सुत, अरि (रिपु), पत्नी, मरण (आयु), शुभ (भाग्य), आस्पद (कर्म), आय और (रिष्फ) व्यय ये क्रमशः बारह भावों के नाम हैं । इन बारह भावों की विशेष संज्ञाएं भी कही गयी हैं –

कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम्(बृहज्जातक १/१७)
केन्द्रात्परं पणफरं परतश्च सर्वम्आपोक्लिमं हिबुकमम्बुसुखं च वेश्म ।
जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं,मेषूरणं दशममत्र च कर्म विद्यात् ।।
.....उपचयान्यरिकर्मलाभ–
दुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणि न नित्यमेके ।(बृहज्जातक १/१८–१९)

केन्द्र स्थान प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम को कहते हैं, इसी को कण्टक तथा चतुष्टय भी कहा गया है। लग्न अर्थात् प्रथम भाव को उदय स्थान, चतुर्थ स्थान को पाताल, सप्तम को अस्त तथा दशम को आकाश भी कहा गया है। पंचम एवं नवम भावों को त्रिकोण कहा जाता है। त्रिकोण के अन्तर्गत लग्न भी गृहीत है। द्वितीय, पंचम, अष्टम एवं एकादश भावों को पणफर तथा तृतीय, षष्ठ, नवम तथा द्वादश स्थान को आपोक्लिम कहा गया है। चतुर्थ को हिबुक, सप्तम को जामित्र, नवम को तप तथा दशम स्थान को मेषूरण भी कहा गया है। केन्द्र को विष्णु तथा त्रिकोण को लक्ष्मी भी कहा गया है।

जन्माङ्ग में प्रत्येक भाव महत्त्वपूर्ण होता है। इन्हीं द्वादश भावों में स्थित राशियाँ एवं ग्रह अपना अशुभ अथवा शुभ फल देते हैं। प्रत्येक भाव से क्या–क्या विचार करना चाहिए कहा जा रहा है।

देहं रूपं च ज्ञानं च वर्णं चैव बलाबलम् ।
सुखं दुःखं स्वभावम् च लग्नभावानिरीक्षयेत् ।।(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/१)

प्रथम भाव से जातक की शारीरिक स्थिति, स्वास्थ्य, रूप, वर्ण, चिह्न जाति, स्वभाव, गुण, आकृति, सुख, दुःख, शिर भाग, पितामह तथा शील आदि का विचार करना चाहिए।

धनं धान्यं कुटुम्बांश्च मृत्युजालममित्रकम् ।
धातुरत्नादिकं सर्वं धनस्थानान्निरीक्षयेत् ।।(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/२)

द्वितीय भाव से धन संग्रह, पारिवारिक स्थिति, उच्च विद्या, खाद्य पदार्थ, वस्त्र, मुखस्थान, दाहिनी आँख, वाणी, अर्जित धन तथा स्वर्णादि धातुओं का विचार होता है।

विक्रमभृत्यभ्रात्रादि चोपदेश प्रयाणकम् ।
पित्रोर्वै मरणं विज्ञो दुश्चिक्याच्च निरीक्षयेत् ।।(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/३)

तृतीय भाव से पराक्रम, छोटे भाई–बहनों का सुख, नौकर–चाकर, साहस, शौर्य, धैर्य, चाचा, मामा तथा दाहिने कान का विचार करें।

वाहनान्यथ बन्धूंश्च मातृसौख्यादिकान्यपि ।
निधिक्षेत्रं गृहं चापि चतुर्थात् परिचिन्तयेत् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/४)

चतुर्थ भाव से माता का विचार, स्थायी सम्पत्ति, भूमि, भवन, वाहन, पशु आदि का सुख, मित्रों की स्थिति, वापी–कूप–तडागादि की स्थिति, श्वसुर का विचार तथा हृदय स्थान का विचार करना चाहिए।

यन्त्रमन्त्रौ तथा विद्यां बुद्धेश्चैव प्रबन्धकम् ।
पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत् पुत्रालयाद् बुधः ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/५)

पंचम भाव से विद्या, बुद्धि, नीति, गर्भस्थिति, सन्तान का विचार, गुप्तमन्त्रणा, मन्त्रसिद्धि, विचार शक्ति, लेखन, प्रबन्धात्मक योग्यता, पूर्वजन्म का ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान, प्रेम–सम्बन्ध, इच्छाशक्ति, उदर स्थान आदि का विचार करे।

मातुलातंकशंकानां शत्रूंश्चैव व्रणादिकान् ।
सपत्नीमातरं चापि षष्ठभावान्निरीक्षयेत् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/६)

षष्ठ भाव से शत्रु, रोग, ऋण, चोरी अथवा दुर्घटना का विचार, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभादि विकारों का विचार, अपयश, मामा की स्थिति, मौसी, पापकर्म, गुदा स्थान तथा कमर सम्बन्धी रोगों का विचार करना चाहिए।

जायामध्वप्रयाणं च वाणिज्यं नष्टवीक्षणम् ।
मरणं च सर्वदेहस्य जायाभावान्निरीक्षयेत् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/७)

सप्तम भाव से स्त्री एवं विवाह सुख, स्त्रियों की कुण्डली में पति का विचार, वैवाहिक सुख, साझेदारी के कार्य, व्यापार में हानि, लाभ, वाद विवाद, मुकदमा, कलह, प्रवास, छोटे भाई–बहनों की सन्ताने, यात्रा तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी गुप्त रोगों का विचार करना चाहिए।

आयूरणं रिपुं चापि दुर्गं मृतधनं तथा ।
गत्यनूकादिकं सर्वं पश्येद् रन्ध्राद् विचक्षणः ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/८)

अष्टम भाव से मृत्यु तथा मृत्यु के कारण, आयु, गुप्तधन की प्राप्ति, विघ्न, नदी अथवा समुद्र की यात्राएँ, पूर्वजन्मों की स्मृति, मृत्यु के बाद की स्थिति, ससुराल से धनादि प्राप्त होने की स्थिति, दुर्घटना का विचार, पिता के बड़े भाई तथा गुदा अथवा अण्डकोश आदि गुप्त रोगों का विचार करना चाहिए।

भाग्यं श्यालं च धर्मं च भ्रातृपत्न्यादिकांस्तथा ।
तीर्थयात्रादिकं सर्वं धर्मस्थानान्निरीक्षयेत् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/९)

नवम भाव से धर्म, दान, पुण्य, भाग्य, तीर्थयात्रा, विदेश–यात्रा, उत्तम विद्या, पौत्र का विचार, छोटा बहनोई, मानसिक वृत्ति, मरणोत्तर जीवन का ज्ञान मन्दिर आदि का विचार, गुरु का विचार, यश तथा जंधे आदि विचार करना चाहिए।

राज्यं चाकाशवृत्तिं च मानं चौव पितुस्तथा ।
प्रवासस्य ऋणस्यापि व्योमस्थानान्निरीक्षयेत् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/१०)

दशम भाव से पिता का विचार, कर्म का विचार, अधिकार की प्राप्ति, राज्य प्रतिष्ठा, पदोन्नति, नौकरी, व्यापार, विदेश–यात्रा, जीविका का साधन, कार्यसिद्धि, नेता का विचार, सास का विचार, आकाशीय विचार एवं घरों का विचार करना चाहिए।

नानावस्तुभवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च ।
अयं वृद्धिं पशूनां च भवस्थानान्निरीक्षयेत् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/११)

एकादश भाव से आय का विचार, बड़ा भाई, मित्र, दामाद, पुत्रवधु, ऐश्वर्य सम्पत्ति, वाहनादि का सुख, पारिवारिक सुख, गुप्तधन,दाहिना कान, माङ्गलिक कार्य, भौतिक पदार्थ, द्वितीय पत्नी तथा पैर का विचार करें।

व्ययं च वैरिवृत्तान्तरिष्फमन्त्यादिकं व्ययात् ।
एवं भावफलं सम्यक् तत्तत्संज्ञानपूर्वकम् ।।

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र १२/१२)

द्वादश भाव से धनहानि, खर्च, दण्ड, व्यसन, शत्रुपक्ष से हानि, बायाँ नेत्र, अपव्यय, गुप्तसम्बन्ध, शय्यासुख, दुःख, पीड़ा, बन्धन, कारागार का विचार, मरणोपरान्त जीव की गति का विचार, मुक्ति, षडयन्त्र, धोखा राजकीय संकट तथा पैर के तलुए का विचार करना चाहिए।

भाव एवं भावेश ग्रहों के अतिरिक्त भावों के कारकत्वादि का भी विशेष रूप से विचार करना चाहिए, कारण कि किसी भाव का पूर्णफल तभी होता है जब भाव, भावेश तथा कारकादि ग्रह बली होते हैं। भावों के कारक ग्रह इस प्रकार हैं –

प्रथम भाव का कारक ग्रह सूर्य, द्वितीय का गुरु, तृतीय का मंगल, चतुर्थ का चन्द्रमा, पंचम का गुरु, छठे का मंगल, सातवें का शुक्र, आठवें का शनि, नवें का सूर्य, दशम का सूर्य अथवा बुध, एकादश का गुरु तथा द्वादशभाव का कारक ग्रह शनि माना गया है। ज्योतिर्विदों के अनुसार सूर्य से नवम भाव में पापग्रह हो तो पिता को, चन्द्रमा से चतुर्थ पापग्रह माता को, मंगल से तृतीय भाव में पापग्रह भाई को, बुध से चतुर्थ पापग्रह मामा को, गुरु से पंचम पापग्रह पुत्रादि को, शुक्र से सप्तम पापग्रह स्त्री को तथा शनि से अष्टम भाव में पापग्रह हों तो स्वयं जातक के लिए अरिष्ट करते हैं।

भाव एवं भावेश के कुछ विशेष फल पाराशरादि ऋषियों द्वारा कहे गये हैं। जो इस प्रकार हैं –

जो भाव अपने स्वामी ग्रह अथवा शुभ ग्रह से युत अथवा दृष्ट हो उस भाव की वृद्धि तथा जो भाव अपने स्वामी ग्रह से युत या दृष्ट न हो तथा पापग्रह से युत या दृष्ट हो उस भाव सम्बन्धी फल की हानि जाननी चाहिए –

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा तस्य तस्याभिवृद्धिः ।
पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्देष्टव्या पृच्छतो जन्मतो वा ।।

(षट्पञ्चाशिका)

त्रिकोणस्थानों के स्वामी ग्रह चाहे शुभ हों अथवा पाप सदैव शुभफल देने वाले होते हैं। केन्द्रस्थान के स्वामी ग्रह यदि क्रूर या पाप ग्रह हों तो शुभफल किन्तु यदि केन्द्र स्वामी ग्रह शुभ हों तो फल अशुभ देते हैं –

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः ।
न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि ।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ।।(लघुपाराशरी, १/६,७)

ये होरा–शास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त या नियम हैं, जो कुण्डली के सभी रूपों (भेदों) में चाहे प्रश्न–कुण्डली हो या वर्षफल–कुण्डली, समान रूप से क्रियान्वित होते हैं ।

यहां यह स्पष्ट है कि जन्मकुण्डली, जन्मकालीन लग्न के आधार पर तैयार होती है किन्तु इसके अतिरिक्त और भी विधाएं है भविष्य–फल–कथन की, जैसे प्रश्न–कुण्डली, वर्ष–कुण्डली आदि।

होरा स्कन्ध के स्वरूप को संक्षेप में जानने के लिए इस चार्ट को देखें –

होरा

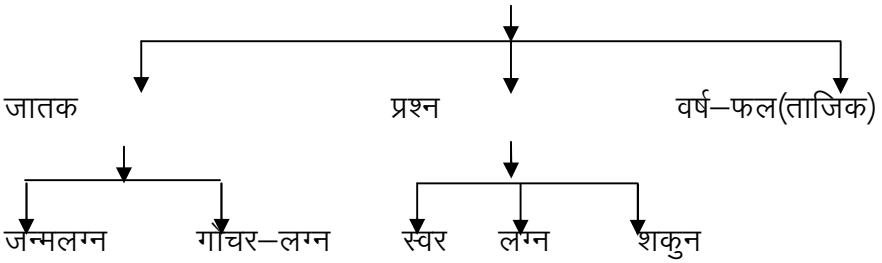

4.2.2 प्रश्न–कुण्डली

जहां तक प्रश्न–कुण्डली की बात है, यदि कोई व्यक्ति आजीविका, दाम्पत्य, सन्तति अथवा किसी भी प्रकार के लाभ–हानि–सम्बन्धी प्रश्न किसी ज्योतिषी से करता है तो उस समय (प्रश्न करने के समय) के लग्न, जिसे 'प्रश्न–लग्न' कहते हैं, के आधार पर बनाई गयी कुण्डली 'प्रश्न–कुण्डली' कहलाती है। प्रश्न–कुण्डली के कुछ अन्य भी विशेष सिद्धान्त होते हैं, जिनमें 'आरूढ लग्न', 'मान्दि' (गुलिक), भावों से विचारणीय–विषय आदि भिन्न होते हैं। आरूढ़ लग्न एवं प्रश्न–लग्न के निर्धारण की भी बहुत विधियां दक्षिण–भारत, विशेषकर केरल में हैं। प्रश्न–कुण्डली के कुछ स्थलों पर स्वरशास्त्र और शकुनशास्त्र के सिद्धान्तों का भी आश्रय लिया गया है। उदाहरण के लिए, प्रश्नकर्ता के द्वारा उच्चरित प्रथम स्वर के आधार पर, देवता, पुष्प, संख्या आदि के आधार पर या अंग–स्पर्श के आधार पर अथवा किसी शुभ या अशुभ शकुन के आधार पर भी ज्योतिषी लग्न एवं फल का निर्धारण करता है।

4.2.3 वर्ष–कुण्डली

इसी प्रकार जन्मकाल के आधार पर, आगामी वर्ष का आरम्भ जिस समय होता है उस समय के लग्न को 'वर्ष–लग्न' कहते हैं। उस लग्न के आधार पर जिस कुण्डली का निर्माण किया जाता है उसे 'वर्ष–कुण्डली' कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष की अलग–अलग कुण्डली बनाकर उसके आधार पर वार्षिक–फलादेश किया जाता है। यह विधा तजाकिस्तान के फलित–शास्त्र से प्रभावित होने के कारण 'ताजिक' कहलाती है। इसमें 'इक्कबाल', 'इन्दुवार', 'कम्बूल', 'ईसराफ' आदि विशेष योग के आधार पर फलादेश किया जाता है। इसमें दशाएं भी विंशोत्तरी से भिन्न 'मुद्दा', 'पात्यायानी' आदि चलती हैं।

4.3 होरा स्कन्ध की प्रतिष्ठा

ज्योतिष–शास्त्र की प्रतिष्ठा के विषय में पहली इकाई में चर्चा हो चुकी है कि वेदो की प्रतिष्ठा के समय से ही ज्योतिष–शास्त्र भी उसके अङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित है और उसी समय से ज्योतिष के फलित स्कन्ध की भी प्रतिष्ठा समझनी चाहिए।

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों की नामावली विविध ग्रंथों और पुराणों में मिलती है।

सूर्यः पितामहो व्यासः वशिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा।।
लोमशः पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिषशास्त्रप्रवर्तकाः।।

इनमें सूर्य और पितामह को सनातन परम्परा में ऋषि न मानकर देव माना गया है । शेष ऋषि हैं। ये हैं व्यास, वशिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अङ्गिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन, यवन, भृगु और शौनक।

सूर्य से अरुण और मयासुर, शिव से पार्वती, पितामह ब्रह्मा से नारद, पराशर से मैत्रेय, व्यास से वैशम्पायन, इसी प्रकार पुलस्त्य, गर्ग और अत्रि से उनके शिष्यों द्वारा गुरु–शिष्य–परम्परा के द्वारा शनैः–शनैः इस शास्त्र का विकास हुआ।

4.3.1 अथर्वसंहिता

अथर्व संहिता में नक्षत्रों के स्वरूप, उनके तारों की संख्या, उनके देवता और फल का वर्णन है जिसका आगे चलकर ब्राह्मण–ग्रंथों में विस्तार हुआ। अथर्व संहिता के इस मन्त्र को देखिए –

सुहवं मे कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसु सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ।।

(अथर्वसंहिता १६/७/२)

4.3.2 अथर्व–ज्योतिष

अथर्ववेद से ज्योतिष के सारभूत स्वरूप को एकत्र करके 'अथर्वज्योतिष' अथवा 'आथर्वण ज्योतिष' नाम से आचार्य लगध ने एक रचना की जो कि वस्तुतः 'वेदाङ्ग–ज्योतिष' नामक ग्रन्थ के ३ खण्डों में से एक माना जाता है । इस ग्रन्थ के अन्य दो खण्ड 'ऋक्ज्योतिष' एवं 'याजुष्ज्योतिष' हैं । वैदिक–साहित्य में नक्षत्रों और मुहूर्तो का अधिक प्रचार था, जो कि भारतीय–ज्योतिष के मूलभूत तत्त्व रहे हैं । इन्हीं का पल्ल्वन आचार्य लगध ने अपने ग्रन्थ में किया है।

अथर्व ज्योतिष में मुहूर्तों की संख्या १५ बताई गयी है। बारह अंगुल के शंकु की छाया के भिन्न–भिन्न परिमाण ही इन मुहूर्तों की अवधि हैं। यदि शंकु छाया ६६ अंगुल के लगभग है तो वह काल–खण्ड (मुहूर्त) 'रौद्र' कहलाता है। ६० अंगुल छाया जब हो तब 'श्वेत' नामक मुहूर्त, १२ अंगुल परिमाण में 'मैत्र' संज्ञक मुहूर्त, ६ अंगुल प्रमाण में 'सारभट' मुहूर्त, ५ अंगुल में 'सावित्र', ४ अंगुल में 'वैराज', ३ अंगुल में 'विश्वावसु' मुहूर्त होता है। मध्याह्न के बाद उपर्युक्त छाया के उत्क्रम से मुहूर्तों का ज्ञान किया जाता है। मध्याह्न में छाया का मान शंकुमूल में आने पर 'अभिजित्' नामक शुभ मुहूर्त होता है। मुहूर्तों के अनुरूप उनके शुभाशुभ फल समझना चाहिए। जैसे –

रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत रुद्रकार्याणि नित्यशः।
यच्च रौद्रं भवेत् किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।
श्वेते वासश्च स्नानं च ग्रामोद्यानं तथा कृषिः।
विजयेन प्रयातस्य विजयो नात्र संशयः।

(वेदाङ्ग ज्योतिष, मुहूर्त प्रकरण, भाग २, १–११)

जैसा कि पूर्व में ही मैंने कहा कि वैदिक ज्योतिष और वेदोत्तर ज्योतिष नक्षत्र–प्रधान था। इसलिए आथर्वण ज्योतिष में 'नक्षत्र–प्रकरण' सबसे बड़ा है, जिसमें विस्तार से उनके लक्षण, देवता और फल का वर्णन मिलता है। इसमें ३–३ नक्षत्रों का वर्ग बनाकर उनकी 'जन्म', 'सम्पत्', 'विपत्', 'क्षेम्य', 'प्रत्वर', 'साधक', 'नैधन', 'मैत्र', ' अतिमैत्र' ये संज्ञाए पढी गयी हैं, जिनका फल उनके नाम के अनुरूप बताया गया है–

जन्म सम्पत्विपत् क्षेम्यः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्र एव तु।।

(आथर्वण ज्योतिष, नक्षत्रप्र. ६/४)

इसके अतिरिक्त जन्म नक्षत्र से १०वां नक्षत्र 'कर्म', १६वां 'गर्भाधानक' कहा गया है।

4.4 होरा स्कन्ध की प्रगति में पाराशर का अवदान

महर्षि–पाराशर ज्योतिष की ऋषि–परम्परा के अग्रणी ज्योतिर्विद रहे हैं। उनका महनीय अवदान ज्योतिष–शास्त्र में विशेषकर होरा–स्कन्ध में निश्चय ही मील का पत्थर है और परवर्ती होराशास्त्रीय–ग्रंथों के लिए मार्गदर्शन प्रस्तुत करता रहा है। होरास्कन्ध पर उनकी ३ कृतियां 'बृहत्', 'मध्य' और 'लघु' के नाम से ख्यात हैं।

4.4.1 बृहत्पाराशरहोराशास्त्र

महामुनि पराशरविरचित बृहत्पाराशरहोराशास्त्र (बृहत्पाराशरी) ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र का अत्यन्त प्रौढ़ तथा विशेष उपयोगी ग्रन्थ है, त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष में यह होरास्कन्ध का अप्रतिम प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें जातक सम्बन्धी सभी बातें निरूपित हैं। यह पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दो भागों में विभक्त है। वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थ में १०० अध्याय हैं, जो कि पूर्वार्ध में तथा उत्तरार्ध में विभक्त हैं।

प्रारम्भ में ही मैत्रेय जी द्वारा ज्योतिष शास्त्र का उपदेश देने की प्रार्थना करने पर पराशर जी ने मंगलाचरण में सर्वप्रथम ग्रहों के स्वामी तथा समस्त जगत् की उत्पत्ति के कारण स्वरूप भगवान् सूर्य को प्रणाम करके कहा–मैत्रेय जी ! वेद के नयनरूप इस शास्त्र का उपदेश मुझे ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ है और उन्होंने मुझे जो उपदेश दिया, वह मैं यथावत् रूप से आपसे कहूँगा–

वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्
(बृह.पारा.हो.शा., पू० १।४)

तदनन्तर पराशर जी ने सर्वप्रथम पहले अध्याय में सृष्टिरचना का क्रम बताया और यह निरूपित किया कि अव्यक्तात्मा विष्णु ही सत्त्वादि शक्तियों को धारणकर इस जगत् के स्रष्टा, पालक तथा संहर्ता हैं। वे वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नामक व्यूहचतुष्टय को धारण करते हैं। सभी जीवों में परमात्मा स्थित हैं और यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा में ही स्थित है। सभी जीवों में दो अंश रहते हैं–१–जीवांश तथा २–परमात्मांश। किसी में जीवांश अधिक होता है और किसी में परमात्मांश। सूर्य–चन्द्र आदि ग्रहों में, ब्रह्मा–शिव आदि देवताओं में तथा अन्य अवतारों में परमात्मा का अंश अधिक होता है। राम, कृष्ण, नरसिंह तथा वाराह–ये चार पूर्ण अवतार हैं और शेष अवतार जीवांश से युक्त हैं–

रामः कृष्णश्च भो विप्र नृसिंहः शूकरस्तथा।
इति पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः।।

(बृह.पारा.हो.शा., पू० १ । २४)

पराशर जी एक विशेष बात बताते हुए कहते हैं कि ग्रहरूपी जनार्दन ही जीवों के कर्मफल के देने वाले हैं और सूर्यादि ग्रह ही विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट हुए हैं। सूर्य का ही रामावतार हुआ, चन्द्रमा का कृष्णरूप में अवतरण हुआ मंगल नृसिंहावतार के रूप में प्रकट हुए और बुध का बौद्धावतार हुआ। बृहस्पति का वामन, शुक्र का परशुराम, शनि का कूर्म तथा राहु का वराहावतार हुआ। केतु का मत्स्यावतार हुआ अन्य अवतार भी ग्रहों से ही हुए। ये ग्रह प्रलय के समय अव्यक्त परमात्मा में लीन हो जाते हैं। अव्यक्त परमात्म विष्णु ही कालरूप जनार्दन हैं, उन कालरूप पुरुष के अंग ही बारह राशियाँ हैं । मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन–ये बारह राशियाँ क्रम से कालपुरुष के सिर, मुख, दोनों भुजाएँ, हृदय, पेट, कटि, वस्ति, गुह्यस्थान, ऊरू, दोनों जानु, जंघे तथा दोनों चरण हैं।

पराशरजी ने आगे राशियों के स्वरूप का वर्णन किया है। तदनन्तर ग्रहस्वरूपाध्याय में नवग्रहों में सूर्य को कालपुरुष की आत्मा, चन्द्रमा को मन, मंगल को सत्त्व, बुध को वाणी, गुरु को ज्ञान तथा सुख, शुक्र को बल तथा शनि को दुःख का प्रतिनिधि बताया है। ग्रहों में सूर्य और चन्द्रमा राजा, मंगल नेता, बुध राजकुमार तथा गुरु और शुक्र को मन्त्री बताया गया है, शनि को दास तथा राहु और केतु को सेना बताया गया है। तदनन्तर ग्रहों के स्वरूप का निरूपण तथा ग्रहमैत्री का वर्णन हआ है।तदनन्तर जन्म–कुण्डली एवं होरा–द्रेष्काण–नवांश आदि १६ कुण्डलियों के आनयन की विधि निरूपित है।

सन्तान–सुख के विषय में पराशर कहते हैं कि सन्तान का नष्ट होना तथा अनपत्यता (सन्तानहीन होना या सन्तान होने पर मृत्यु हो जाना) दोष शापजन्य भी होता है। पराशरजी कहते हैं कि नागदेवता कुल की वृद्धि करने वाले हैं, यदि कभी पूर्वजन्म में नागदेव–सम्बन्धी कोई अपराध हो गया हो तो उनके दोष से सन्तानसुख बाधित होता है। इसके लिये ग्रहयोगवश सर्प के शाप को जानकर शान्ति करने से यह दोष दूर हो जाता है। सुवर्ण का नाग बनाकर उसका दान करने से नागदेव प्रसन्न होकर कुल की वृद्धि करते है– ऐसे ही पितृ एवं मातृ, भ्राता, ब्राह्मण, प्रेत आदि वे साथ किया गया अपराध भी सन्तान में बाधा उत्पन्न करता है।

तदनन्तर विंशोत्तरी, षोडशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि दशाओं का वर्णन किया है। विंशोत्तरीदशा नक्षत्र के ऊपर आधारित है। इसमें महादशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा आदि विभेद हैं। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु, शुक्र–इन ग्रहों के क्रमसे विंशोत्तरी दशा होती है।

4.4.2 लघुपाराशरी–मध्यपाराशरी

लघुपाराशरी का अपर नाम 'उडुदायप्रदीप' भी है। उडु का अर्थ है नक्षत्र और दाय अर्थात् आयु, इस प्रकार उक्त दोनों ग्रन्थ नक्षत्रों (दशाफल)–के आधार पर फलादेश बताने वाले हैं। लघुपाराशरी में संज्ञाध्याय, फलनिर्णयाध्याय, राजयोगाध्याय, आयुर्दायाध्याय, दशाफलाध्याय तथा मिश्रफलाध्याय नामवाले छः अध्याय हैं और इसकी पूर्ण श्लोकसंख्या ४२ है। यह ग्रन्थ यद्यपि संक्षिप्त है, किंतु विषयगत गाम्भीर्य होने के कारण फलादेश में यह सर्वाधिक प्रामाणिक तथा अत्यन्त विलक्षण है। इसमें ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध से ही ग्रहों का शुभाशुभत्व एवं योग कारकत्व बताया गया है। अन्य ग्रन्थों ने पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र को शुभग्रह तथा शुभफलप्रद माना है और सूर्य,मंगल, शनि, राहु–केतु, पापग्रह युक्त बुध तथा क्षीण चन्द्र को अशुभ ग्रह एवं अशुभ फलप्रद माना है, परंतु इस ग्रन्थ के अनुसार दशा के फलों के लिये ग्रहों का शुभाशुभत्व उपर्युक्त नैसर्गिक शुभाशुभत्व पर नहीं, अपितु भाव के शुभाशुभत्व पर अवलम्बित है।

मध्यपाराशरी ग्रन्थ आठ परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें कारक, मारक ग्रहों का विचार करके विंशोत्तरीदशा, अन्तर्दशा से फल–कथन का वर्णन है ।

4.5 होरा स्कन्ध का उत्कर्ष

सूर्य, पितामह, वसिष्ठ, अत्रि, पाराशर आदि के ज्योतिष–शास्त्रीय वचनों को प्रसंगवशात व्यास जी ने विभिन्न पुराणों में यत्र–तत्र उपस्थापित किया। यही कारण है कि 'मत्स्यपुराण', 'अग्निपुराण, 'ब्रह्मवैवर्तपुराण', 'स्कन्दपुराण', 'गरुड़ पुराण', 'वायु पुराण', 'नारदपुराण' आदि में फलित–ज्योतिष के सिद्धान्त अत्यधिक मात्रा में मिलते हैं । यहां विस्तार–भय से केवल नामोल्लेख करना ही पर्याप्त होगा, विशेष ज्ञान–हेतु उन पुराणों का अध्ययन जिज्ञासु कर सकते हैं।

इन पुराणों के अतिरिक्त कुछ संहिता–ग्रन्थ यथा 'नारदसंहिता', 'गर्गसंहिता', 'लोमशसंहिता', 'शिवसंहिता' आदि भी मिलते हैं, जिनमें ज्योतिष के गंभीर विषयों का वर्णन है।

4.5.1 जैमिनिसूत्र

यह ४ अध्यायों का सूत्रात्मक ग्रन्थ है। पाराशर के जातक–पद्धति से भिन्न जैमिनी की पद्धति में 'आरूढलग्न', 'पदलग्न', 'कारकांश लग्न' का प्रयोग है और 'आत्मकारक', 'अमात्यकारक' आदि कारकों को फल का आधार बनाया गया है। इसमें दशाएं भी 'स्थिर', 'चर', 'माण्डूक्य' आदि ली गयी हैं। यद्यपि वराहमिहिर ने इसका उल्लेख नहीं किया है तथापि यह आर्ष–माना जाता है और इसका दक्षिण भारत में अधिक प्रचार है। इसमें भी 'कट पयादि सूत्रों का प्रयोग किया गया है जिसका प्रचलन दक्षिण भारत में अधिक है। इस पर अनेकों टीकाएं उपलब्ध हैं।

4.5.2 बृहज्जातक

वराहमिहिर का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बृहज्जातक' इस स्कन्ध–सम्बन्धी–साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। कालांतर में इस ग्रन्थ के आधार पर कई स्वतन्त्र ग्रंथों का निर्माण हुआ। इस ग्रन्थ में २८ अध्याय हैं,जो इस प्रकार हैं – १. राशिप्रभेद, २. ग्रहयोनि, ३. वियोनिजन्म, ४. निषेक, ५. जन्मविधि, ६. अरिष्ट, ७. आयुर्दाय, ८. दशान्तर्दशा, ९. अष्टकवर्ग, १०. कर्माजीवाध्याय, ११. राजयोग, १२. नाभसयोग, १३. चन्द्रयोग, १४. द्विग्रहयोग, १५. प्रव्रज्यायोग, १६. ऋक्षशील, १७. चन्द्रराशिशीलाध्याय, १८. राशिशीलाध्याय, १९. दृष्टिपाताध्याय, २०. भावाध्याय, २१. आश्रययोगाध्याय, २२. प्रकीर्णाध्याय, २३. अनिष्टयोगाध्याय, २४. स्त्रीजातकाध्याय, २५. नैर्याणिकविचाराध्याय, २६. नष्टजातकाध्याय, २७. द्रेष्काणाध्याय और २८. उपसंहाराध्याय । इस ग्रन्थ की विशेषता इसका आयुर्दायाध्याय और दशान्तर्दशाध्याय है जिसमें आचार्य ने विंशोत्तरी दशा–साधन की अपेक्षा सत्याचार्य नामक यवन आचार्य की दशा–साधन को स्वीकारा है । हालांकि इनका ये दशा–साधन व्यवहार में नहीं लिया जाता है । इन्होंने ग्रहों के फलों में भी राहु–केतु के फल पर विचार नहीं किया है, इससे यवन–ज्योतिष का अधिक प्रभाव इनके फलित–शास्त्रीय–मान्यताओं पर स्पष्ट परिलक्षित होता है । साहित्य की दृष्टि से विचार करें तो अपने अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इस ग्रन्थ में विविध गेय छंदों का अधिक प्रयोग आचार्य ने किया है । इस ग्रन्थ पर सर्वमान्य एवं सर्वश्रेष्ठ टीका भट्टोत्पल (८८८ शक) की 'भट्टोत्पली' है, जो कि केदारदत्त जोशीकृत हिन्दी व्याख्या के साथ मोतीलाल बनारसीदास प्रेस से छापी है । इसके अतिरिक्त रुद्रदेव की दशाध्यायी टीका ग्रन्थ के १० अध्यायों पर लिखी मिलती है ।

सारावली ९वीं शताब्दी का कल्याणवर्मा का रचित होरा–स्कन्ध का प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें ४२ अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त १२वीं से १५वीं शताब्दी के मध्य श्रीपति की 'जातकपद्धति', केशव का 'केशवीय जातकपद्धति', अनन्तकृत 'जातकपद्धति' ढुण्ढ़िराजकृत 'जातकाभरण', वीरसिंहकृत 'वीरसिंहावलोक' आदि प्रसिद्ध जातक–ग्रन्थ रहे। १६वीं शताब्दी में गणेश रचित 'जातकालंकार' अत्यंत प्रमुख व प्रसिद्ध रचना थी। यह ग्रन्थ ६ अध्यायों में विभक्त है जिसमें १०० से अधिक श्लोक हैं। यद्यपि यह ग्रन्थ छोटा है किन्तु 'लघुपाराशरी के समान आज भी अत्यंत समादृत है। इसके अलावा दिवाकर कृत 'पद्मजातक' १०४ श्लोकों का ग्रन्थ है। १७वीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रंथों में गोविन्द का 'होराकौस्तुभ', नारायण की 'होरासुधानिधि', बलभद्र का 'होरारत्न' आदि भी प्रसिद्ध हैं।

4.5.3 जातकपारिजात

यह १४वीं शताब्दी का अत्यन्त प्रसिद्ध जातक–ग्रन्थ दक्षिण–भारतीय ज्योतिषी वैद्यनाथ द्वारा रचित है, जो कि जातकालंकार के रचयिता गणेश के पिता और जातकपद्धति के प्रणेता केशव के गुरु थे। अत्यन्त ही सुंदर छंदों में निबद्ध इस ग्रन्थ पर बृहज्जातक, सर्वार्थचिन्तामणि आदि प्राचीन ग्रंथों का प्रभाव है। इसमें दाक्षिणात्य–ज्योतिष में प्रचलित कई विशेष सिद्धान्त मिलते हैं, जिनका पल्लवन कालांतर में वहां के प्रश्न–शास्त्रीय ग्रन्थों में हुआ।

इसके अतिरिक्त मन्त्रेश्वर की 'फलदीपिका' भी अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह गोचर–कुण्डली के लिए अत्यन्त ही प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है । इसमें २८ अध्याय हैं ।

4.5.4 प्रश्नमार्ग

यह केरल के विद्वान् नम्बूदरी ब्राह्मण द्वारा १७वीं शताब्दी में रचित प्रश्न–पद्धति पर आधारित ३२ अध्यायों का एक विशाल ग्रन्थ है। यह २ भागों में विभक्त है। इसके प्रथम भाग पर नीलकंठ शर्मा की संस्कृत टीका मिलती है। यह 'प्रश्न–उपस्कन्ध' का अत्यंत ही प्रामाणिक और समादृत ग्रन्थ है। इसमें अनेकों चमत्कारोत्पादक विषयों का समावेश है। 'प्रश्न' पर केरल में जितना विकास हुआ उतना अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। प्रश्न–लग्न के निर्धारण की अनेकों विधियां जो केरल एवं अन्य दक्षिण–भारतीय–प्रदेशों में चलती हैं का समावेश इस ग्रन्थ में हुआ है। 'प्रश्न' उपस्कंध के विषय में अध्ययन की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को इस ग्रन्थ का अवश्य ही अध्ययन करना चाहिए।

4.5.5 ताजिकनीलकण्ठी

'ताजिक–उपस्कन्ध' का यह एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसकी रचना १६वीं शताब्दी में हुई। इसके प्रणेता अनंतकाल दैवज्ञ के पुत्र नीलकंठ ने की। इसके अनुसार वर्ष–कुण्डली का साधन करके वर्षभर का फलादेश किया जाता है। इसके बहुत सिद्धान्त 'जातक' से भिन्न हैं। इसमें पारसी और अरबी भाषा के शब्दों के माध्यम से 'इक्कबाल', 'इन्दुवार', 'इसराफ' आदि विविध योगों का उल्लेख किया गया है। ताजिक में वर्ष–कुण्डली का मूल वर्षप्रवेश कालिक–लग्न और 'मुन्था' (इन्त्था) है। जन्म समय में मुन्था जन्म–लग्न में रहती है। इसके पश्चात् दूसरे वर्ष में जन्म–लग्न से दूसरे भाव में, तीसरे वर्ष में जन्म–लग्न से तीसरे भाव में इसी क्रम में १२ वर्षों में जन्म–लग्न से १२ भावों में विचरण करके १३वें वर्ष में मुन्था पुनः जन्म लग्न में आ जाती है। संक्षेप में १ वर्ष में मुन्था एक–एक राशि का भ्रमण करती है, जिससे फल बदलते हैं। ग्रहों की दृष्टि में भी ४ प्रकार का वर्गीकरण किया जाता है – १. प्रत्यक्षस्नेहा, २. गुप्तस्नेहा, ३. प्रत्यक्षवैरा और ४. गुप्तवैरा। इसके अतिरिक्त हद्दा, पंचवर्गीबल, सहम आदि विशेष योग हैं। इसमें काल–निर्धारण हेतु विंशोत्तरी–दशा का प्रयोग नहीं किया गया है अपितु पात्यायनी दशा, मुद्दा दशा आदि दशाओं का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार ताजिक–पद्धति आधारित इस ग्रन्थ में अनेकों विषय नए हैं, जिनका प्रयोग पारंपरिक भारतीय–जातक–पद्धति में नहीं हुआ है। पूरा ग्रन्थ मुख्यतः – १. संज्ञा तंत्र, २. वर्ष तंत्र और ३. प्रश्न तंत्र इन ३ भागों में बंटा हैं। इसमें कुल १५ अध्याय हैं। ताजिक–ज्योतिष के आधारभूत नियमों का इसमें विस्तार से वर्णन है। वर्ष–फल हेतु यह आज भी सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं सर्वमान्य ग्रन्थ माना जाता है।

4.6 होरा–स्कन्ध का महत्त्व एवं सम्भावनाएं

विधाता के लिखे हुए भाग्य के अनुसार सभी सांसारिक जन जनसुख–दुःख, लाभ–हानि, आधि–व्याधि में पड़े हुए हैं और यह सुख–दुःख रूपी भोग संसार में आए सभी को भोगना पड़ता है, चाहे वह स्वयं साक्षात सूर्य ही क्यों न हो!

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी ।
विधुरपि विधियोगात् ग्रस्यते राहुणासौ,
लिखितमपि ललाटे प्रोञ्छितुं कः समर्थः ।।

इन सभी सुख–दुःखात्मक भोग–रूपी फल का कोई न कोई कारण–रूपी बीज तो अवश्य ही होगा, किन्तु इसका कारण क्या है? तो उत्तर है, वह कारण पूर्व–जन्मों में किए गये कर्म हैं। अब यदि कारण है तो कार्य भी अवश्य ही होगा, इस नियम के आधार पर कर्म–रूपी कारण का कार्य तो 'फल' ही हो सकता है। यह फल शुभ होगा या अशुभ यह इस बात पर निर्भर करता है कि कर्म शुभ हैं अथवा अशुभ। एक विचित्र आश्चर्य संसार का यह है कि इस सृष्टि का नियम प्रभु ने ऐसा बनाया है कि बिना फल–भोगे छुटकारा नहीं मिलेगा, मुक्ति नहीं होगी। भगवान् स्वयं कहते हैं–

नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।। नारदपुराण पूर्णभाग 31.69.70

अर्थात् शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल तो भुगतना ही पड़ता है। करोड़ों जन्म बीत जाएं तो क्या जब तक सम्पूर्ण कर्मों का भोग नहीं होगा उनका क्षय नहीं हो सकता है, फलतः मुक्ति भी नहीं होगी।

अब ऐसे में शुभ अथवा अशुभ फल को भोगने में सहायता प्रभु के आदेश पर ग्रह करते हैं दूसरे शब्दों में कहूं तो परमात्मा ही ग्रहों के रूप में सुख–दुःख का नियन्त्रण करते हैं –

अवताराण्यनेकानि ग्रहस्य परमात्मनः ।
जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपो जनार्दनः ।।
देवता ग्रहरूपेण मनुष्याणां शुभाशुभम् ।
फलं प्रागर्जितं यच्च तद्ददाति स्वकीयकम् ।।

इस कारण को केवल ज्योतिष–विद्या के आधार पर ही जाना जा सकता है, न कई किसी अन्य शास्त्र के माध्यम से, यही कारण है कि ज्योतिष–शास्त्र अन्य शास्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। देखने का कार्य तो नेत्र ही करता है, चूंकि भविष्य या विधाता के द्वारा लिखित दैव को देखने का कार्य ज्योतिष करता है इसलिए इसे 'नेत्र' कहा गया। यथा–

विधात्रा लिखिता यासौ ललाटेऽक्षरमालिका ।
दैवज्ञस्तां पठेन्नित्यं होरानिर्मलचक्षुषा ।।

अतः यह ज्योतिष शास्त्र वेद का ही नहीं अपितु लोक का भी नेत्र है, जिसके अभाव में मनुष्य अकिंचन हो जाता है। इसके महत्त्व को स्थापित करते हुए भास्कराचार्य कहते हैं –

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते ।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ।।

अर्थात् वेद का नेत्र होने के कारण यह ज्योतिष–शास्त्र सभी वेदाङ्गों में प्रधान और श्रेष्ठ है क्योंकि जिस प्रकार कान, नाक आदि अङ्गों के होने के बावजूद नेत्र न होने से मनुष्य असमर्थ होता है, ठीक उसी प्रकार व्याकरण, शिक्षा आदि वेदांगों के होने के बावजूद यदि ज्योतिष–रूपी वेद–चक्षु न हो तो यह वेद–पुरुष अपूर्ण एवं असमर्थ होता है।

स्वास्थ्य, शिक्षा एवं आजीविका के क्षेत्र में अनन्त सम्भावनाओं वाला स्कन्ध

आधान–कुण्डली और जन्म–कुण्डली, के आधार पर निर्मित द्रेष्काण–कुण्डली एवं त्रिंशांश कुण्डली का यदि गहनता से अध्ययन किया जाए तो जातक के आजीवन होने वाले शारीरिक –कष्टों की सूचना मिल सकती है। ऐसे में यदि कुंडली का गंभीरता से अध्ययन करें तो कारणों को अभिव्यक्त किया जा सकता है और यह भी बताया सकता है कि उक्त रोग कब उत्पन्न हुआ? कब तीव्र हुआ? और कब समाप्त होगा अथवा नहीं होगा, आदि–आदि।

व्यक्ति की रूचि, योग्यता, कौशल एवं तपस्या की क्षमता कुण्डली के माक्ध्य से जानकर शिक्षा–क्षेत्र अथवा अन्य अपेक्षित क्षेत्र में चयन में सहायता की जा सकती है, जिससे न केवल जीवन खराब होने से बच जाए अपितु उसकी प्रतिभा व रूचि के अनुरूप अध्ययन करने से यह शास्त्र उस क्षेत्र में नए अनुसंधान को जन्म दे सकता है। यदि शिक्षा के क्षेत्र में उचित ज्योतिषीय मार्गदर्शन मिल जाए तो आजीविका की समस्या का स्वतः ही समाधान हो जाएगा। इसके अतिरिक्त आजीविका के क्षेत्र में भी प्रतिदिन नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में सही–समय पर सही ज्योतिषीय मार्गदर्शन, कर्म–क्षेत्र में अप्रत्याशित सफलता भी दिला सकता है।

इस प्रकार यह होरा स्कन्ध मानव–मात्र के सर्व–विध कल्याण हेतु सदैव सन्नद्ध है, मात्र आवश्यकता इस बात की है कि इसका गम्भीरता एवं पूरी निष्ठा से अध्ययन किया जाए ।

सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि सभी ग्रह के साथ–साथ प्रकृति के उत्पत्ति व समाप्ति रूपी रहस्य भी ज्योतिष के ज्ञान–पुंज से ही उद्घाटित हो सकते हैं किन्तु इसके लिए ऋषितुल्य अध्ययन एवं तप की आवश्यकता होगी। यथा–

अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचित् आसादयेदनिलवेगवशेन पारम् ।
न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य गच्छेत् कदाचदनृषिर्मनसापि पारम् ।।

अर्थात् तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से मनुष्य समुद्र को पार कर जाए किन्तु कालपुरुष संज्ञक ज्योतिष शास्त्र रूपी महार्णव को ऋषियों के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता है।

4.7 सारांश

आधान–काल, जन्म–काल अथवा प्रश्न–काल के आधार पर निर्मित कुण्डली द्वारा व्यक्ति के यावज्जीवन शुभाशुभ फल का निर्देश यह होरा स्कन्ध करता है । अथर्व संहिता, तैत्तिरीय संहिता आदि में फलित के बीज मिलते हैं जिनका पल्लवन कालांतर में पाराशर, गर्ग, जैमिनी आदि ऋषियों ने और विकास वराहमिहिर, वैद्यनाथ, नीलकंठ आदि आचार्यों ने किया। फलतः कालक्रमवशात् गंभीर शोध और अध्ययन होने के कारण होरा स्कन्ध की प्रगति में अनेक ग्रन्थ लिखे गए।

4.8 शब्दावली

होरा – घंटा, एक आहोरात्र का 24वां भाग
पक्तिम् – पाक (फल)
व्यञ्जयति – प्रकट करता है
सहोत्थ – सहोदर (सगे भाई–बहन)
बन्धु – मित्र
जायाभाव – सप्तम भाव
अध्वप्रयाणम् – यात्रा, प्रवास
नष्टवीक्षणम् – व्यापार में हानि
गत्यनूकादिकम् – पूर्वजन्मों की स्मृति, मृत्यु के बाद की स्थिति।
रन्ध्राद् – अष्टम भाव से
व्योमस्थानात् – दशम भाव से
भवस्थानात् – बारहवें स्थान से
रिष्फ – बारहवां भाव
पृच्छतो – प्रश्नलग्न से
गगनविहारी – आकाश में विचरण करने वाला (ग्रह)
कल्मषध्वंसकारी – दोष एवं अन्धकार का नाश करने वाला
दशशतकरधारी – हज़ारों किरणों वाला
ज्योतिषां मध्यचारी – नक्षत्रों व ग्रहों के मध्य (केंद्र) में रहने वाला
अप्यर्णवस्य – समुद्र का भी
प्रतरन् – तैरता हुआ
आसादयेत् – प्राप्त करे

4.10 बोध प्रश्न

1. होरा ज्योतिष के विषय का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. होरा–स्कन्ध के प्रतिष्ठा–काल पर प्रकाश डालिए।
3. होरा स्कंध के इतिहास में पाराशर की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
4. ताजिक–नीलकंठी ग्रन्थ की विशेषता बताइए।
5. होरा स्कन्ध की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालिए।

4.11 उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय ज्योतिष (मूल लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित), अनुवादक झारखंडी शिवनाथ (१९९०)उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।
2. भारतीय ज्योतिष,नेमीचन्द्र शास्त्री (२०१४), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
3. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, टीका – सुरेश चन्द्र शर्मा, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. लघुपाराशरी, टीका – दीवान चन्द्र कपूर, मोटी लाल बनारसी दास, नई दिल्ली।
5. ताजिकनीलकंठी, टीका – केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।